

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि परम्परागत रूप में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च होते हुए भी आज उनकी स्थिति क्रान्तिकारी रूप में परिवर्तित हुई है। उनका जो प्रभुत्व या विशेषाधिकार पहले धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि क्षेत्रों में था, वह अब नहीं है। आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की महत्ता का वर्तमान युग में बोलबाला होने के कारण परम्परा के आधार पर आधारित ब्राह्मणों की सत्ता का घटना स्वाभाविक ही है। औद्योगिकरण और नगरीकरण ने अनेक नये प्रकार के व्यवसायों आदि को भी जन्म दिया है जिनमें व्यक्तिगत कुशलता या योग्यता को अधिक महत्व दिया जाता है; फलतः निम्न जातियों के लोगों को भी अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने तथा सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने के अवसर प्राप्त हुये हैं। इस रूप में मात्र जाति के आधार पर सामाजिक स्थिति में 'विभेदों' की स्थिति निश्चित रूप से कम हुई है। परन्तु यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि यह 'स्थिति' अभी समाप्त नहीं हुई है; भारतीय समाज में अभी भी निम्न जातियों को उच्च जातियों द्वारा अपेक्षित सम्मान प्रदान नहीं किया जाता है।

(2) पेशों के चुनाव के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध या विभेद (Restrictions or Differentiations in Selecting Occupations)—जातिगत विभेदों में एक प्रमुख विभेद यह है कि परम्परागत रूप में विभिन्न जातियों के अलग-अलग परम्परागत पेशे जन्म से ही निश्चित होते हैं जिन्हें कि प्रत्येक जाति कुछ पेशों को अपना परम्परागत पेशा मानती है और वह उसे ही अपनाती है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों को कर्मकाण्ड, पूजा, पुजारी, पुरोहित आदि का पेशा करना होता है, क्षत्रिय का कार्य समाज की रक्षा, सेना में नौकरी आदि का कार्य करना होता है। इसी प्रकार वैश्यों को व्यापार का पेशा अपनाना होता है और शूद्रों को सामाजिक सेवा से सम्बन्धित अन्य पेशे अपनाने होते हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ एक बात विशेष रूप से स्मरणीय है कि परम्परागत रूप में ये जातिगत विभेद इतने कठोर और प्रभावपूर्ण तरीके से लागू किये गये हैं कि प्रायः प्रत्येक जाति कुछ पेशों को अपना परम्परागत पेशा मानती है और उसे छोड़ना उचित नहीं समझती है। इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के कार्य को, जाटव जूते बनाने के काम को ही करना ठीक समझते हैं। पेशों के चुनाव के सम्बन्ध में विभेदों का एक दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखद पहलू यह भी है कि इन पेशों में एक ऊँचाई-निचाई की भावना भी जुड़ी हुई है और उसी के आधार पर उस जाति विशेष को सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। पेशों की यह ऊँचाई-निचाई पवित्रता और अपवित्रता पर आधारित होती है। जिन पेशों में व्यक्ति को अपवित्र वस्तुओं के सम्पर्क में आना होता है, उन पेशों को नीचा माना जाता है। अपवित्र वस्तुओं में भी एक ऊँच-नीच का विभेदीकरण है। मल-मूत्र सबसे अधिक अपवित्र है। इसी प्रकार चमड़े का काम और गन्दे कपड़े धोने का काम दो पृथक् श्रेणी के व्यक्तियों का होता है। इसके विपरीत धर्म से सम्बन्धित समस्त कार्य परम-पवित्र माने जाते हैं और यही कारण है कि इन कार्यों को करने वाले ब्राह्मणों की स्थिति जातीय-संरचना में 'सर्वमान्य रूप में' सबसे ऊपर है। इस सम्बन्ध में एक अन्य रोचक तथ्य यह भी है कि न केवल एक जाति के व्यक्ति ही अपनी जाति के व्यक्तियों को अन्य पेशों को चुनने से रोकते हैं, अपितु अन्य जाति के व्यक्ति भी अनेक प्रकार से रोकने का प्रयत्न करते हैं। जातिगत विभेदों का इससे अधिक घृणित रूप और क्या हो सकता है?

पेशों के चुनाव के सम्बन्ध में परम्परागत जातिगत विभेदों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रायः प्रत्येक जाति के सदस्यों के लिए एक या कुछ पेशे निश्चित हैं और उसके बाहर उनके लिए पेशों को चुनने की स्वतन्त्रता नहीं है। आधुनिक समय में इन विभेदों व प्रतिबन्धों में पर्याप्त परिवर्तन आया है। धन का महत्व, शिक्षा का विस्तार, प्रौद्योगिकी में उन्नति, धर्म के महत्व में कमी, औद्योगिकरण व नगरीकरण, लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना, व्यक्तिगत योग्यता का महत्व आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनकी वजह से अब पेशों का चुनाव 'जाति' तक सीमित नहीं रह गया है। कानूनी रूप से तो अब किसी भी जाति का सदस्य कोई भी पेशा स्वतन्त्र रूप से अपना सकता है। आज एक ब्राह्मण को जूते की फैकट्री में उच्च पद पर काम करते हुए देखा जा सकता है और एक शूद्र को व्यापार करते हुए। लेकिन इतना सब-कुछ होते हुए भी पेशे सम्बन्धी जातिगत विभेदों का एक नग रूप यह भी है कि ब्राह्मणों के पुरोहितगिरी के पेशे और सबसे नीचे अछूतों के गन्दे पेशों में आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है; समस्त प्रगतिशील विचारों तथा सुधार-प्रयत्नों के बीच भी आज हमें लड़कियों के विवाह-संस्कार में या माता-पिता के श्राद्ध-संस्कार में एक 'हरिजन' पुरोहित का काम करते हुए नहीं दिखाई पड़ता और न ही किसी ब्राह्मण को घर-घर जाकर 'सफाई कर्मचारी' का काम करते देखा जा सकता है। अगर ऐसा होता तो कैसा होता

या अगर ऐसा होता तो कितना अच्छा होता—यह दूसरी बात है, पर व्यापारिक रूप में ऐसा अभी नहीं हो रहा है—यही स्मरणीय है।

(3) विवाह-सम्बन्धी जातिगत विभेद (Caste Differentiation with Regard to Marriage)—जातिगत विभेदों का एक रोचक उदाहरण विभिन्न जातियों में पागे जाने वाले विवाह-सम्बन्धी जातिगत प्रतिबन्ध हैं। प्रत्येक जाति में विवाह-सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध होते हैं। इन विभेदों या प्रतिबन्धों में अन्तर्विवाह का नियम सबसे प्रमुख है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक जाति अनेक उपजातियों में विभाजित है और प्रत्येक जाति अन्तर्विवाही (Endogamous) समूह है, अर्थात् अपनी उपजाति से बाहर विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा नहीं है। भौगोलिक और भाषा सम्बन्धी क्षेत्र में भिन्नता के साथ-साथ अन्तर्विवाह के नियम और भी कठोर हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों में भी अन्तर्विवाह के नियमों के अनुसार ही विवाह किया जाता है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि परम्परागत रूप में जातिगत विभेदों के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह की आज्ञा नहीं है और प्रत्येक जाति के सदस्य को अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग में इन विभेदों और प्रतिबन्धों में पर्याप्त परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। शिक्षा और प्रगतिवादी विचारों के फैलने के साथ-साथ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में स्त्रियों और पुरुषों को परस्पर निकट आने और शिक्षा प्राप्त करने व काम करने का अवसर आज प्राप्त है; साथ ही विवाह, सम्पत्ति आदि के सम्बन्ध में वैधानिक सुविधाएँ उन्हें मिल गई हैं। इन सबका प्रभाव यह है कि आज अन्तर्जातीय विवाह धड़ल्ले से हो रहे हैं; यह प्रवृत्ति बहुत तेजी से आगे बढ़ने की आशा करनी चाहिए—ऐसा करना शुभ होगा।

(4) भोजन और सामाजिक सहवास सम्बन्धी विभेद (Differentiation with Regard to Fooding and Social Intercourse)—जातिगत विभेदों का एक अन्य रूप विभिन्न जातियों में पाये जाने वाले भोजन व सामाजिक सहवास सम्बन्धी विभेद भी हैं। परम्परागत रूप में, प्रत्येक जाति को दूसरी जाति के हाथ का बना भोजन खाने की आज्ञा नहीं है। जातीय नियमों से यह स्पष्ट होता है कि एक जाति के सदस्य किन जातियों के सदस्यों के हाथ का बना हुआ भोजन खा सकते हैं और किन जातियों के सदस्यों के साथ बैठकर खा सकते हैं। उदाहरणार्थ, ब्राह्मणों के हाथ का बना भोजन दूसरी सभी जातियों के सदस्य खा लेते हैं। सबसे अधिक प्रतिबन्ध अछूतों के हाथ के बने भोजन पर है। भोजन के सम्बन्ध में विभेद भोजन के प्रकारों पर भी निर्भर है। इस दृष्टिकोण से भोजन को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है—फलाहारी, पक्का और कच्चा। फलाहारी भोजन में फल, दूध तथा दूध से बनी चीजें, पक्के भोजन में तेल या धी में तली चीजें जैसे पूड़ी, कचौड़ी आदि तथा कच्चे भोजन में पानी में उबाले हुए दाल, चावल तथा रोटियाँ आती हैं। प्रत्येक जाति में यह नियम है कि एक व्यक्ति ये तीन प्रकार के भोजन किनके हाथों का बना खा सकता है। सबसे अधिक प्रतिबन्ध या विभेद 'शूद्रों' के हाथ के बनाये भोजन पर है; इस प्रकार के भोजन को कोई भी अन्य तीन जातियों के सदस्य नहीं खा सकते हैं।

इसी प्रकार परम्परागत रूप में विभिन्न जातियों में सामाजिक सहवास सम्बन्धी भी अनेक प्रतिबन्ध या विभेद पाये जाते रहे हैं। सामान्यतया ऊँची जातियों के सदस्यों द्वारा आयोजित किसी त्योहार या अन्य उत्सव के मौके पर नीची जाति के व्यक्ति को उसमें 'मेहमान' या 'अतिथि' के रूप में भाग लेने का अधिकार नहीं था और न ही उसे आमंत्रित किया जाता था। नीची जाति के व्यक्ति ऐसे अवसरों पर मात्र 'सेवा-कार्यों' के लिए ही जाते थे। इसी प्रकार स्थिति यहाँ तक दयनीय थी कि ब्राह्मण, ठाकुर या वैश्य के घर यदि कोई नीची जाति का व्यक्ति जाता भी था तो उसे प्रायः खड़ा ही रहना पड़ता था और वह भी प्रायः हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर।

सम्भवतः यह बात सामान्य रूप से हम जानते हैं कि आधुनिक शिक्षा के आधार पर समानता के विचारों का पनपना, यातायात व संवाद के साधनों में क्रान्तिकारी उन्नति के कारण सामाजिक गतिशीलता का बढ़ना, नगरों में विभिन्न जाति, धर्म, पेशे और देश के लोगों के सम्पर्क में आने से सामाजिक सहनशीलता का बढ़ना, मिल, कारखाने, बी. पी. ओ. दफ्तर और नगर में अज्ञात जाति के लोगों के साथ परिचय और मित्रता, बढ़ना, होटलों और जलपान-गृहों की बढ़ती हुई लोकप्रियता आदि ऐसे अनेक कारण तथा परिस्थितियाँ हैं जिनके मौल्स, होटलों और जलपान-गृहों की बढ़ती हुई लोकप्रियता आदि ऐसे अनेक कारण तथा परिस्थितियाँ हैं जिनके फलस्वरूप भोजन, खाने-पीने व सामाजिक भ्रह्मवास सम्बन्धी विभेद या तो ढीले पड़ गये हैं या प्रायः समाप्त ही हो

20 गये हैं। विशेषकर नगरों में रहकर भोजन, खान-पान व सामाजिक सहवास सम्बन्धी जातिगत विभेदों का पालन करना आज प्रायः असम्भव ही है। शहरों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उद्देश्यों को लेकर जो संगठन बनते हैं, उनमें सभी जातियों के सदस्य होते हैं और उन सामान्य उद्देश्यों के आधार पर उनमें जो घनिष्ठ सम्बन्ध या कम-से-कम जो सामाजिक निकटता पनपती है, वह फिर खाने-पीने या उठने-बैठने के सम्बन्ध में कट्टरपक्षी नहीं होने देती। साथ-ही-साथ प्रजातात्त्विक आधार पर समानता की जो नीति आज अपनायी जा रही है, उसके अन्तर्गत राष्ट्र के नेतागण और समाज-सुधारक इस प्रकार के विभेदों की घोर निन्दा भी करते हैं जिसका कि प्रभाव सम्पूर्ण जनता पर अवश्य पड़ता है।

(5) धार्मिक और सामाजिक नियोग्यताओं व विशेषाधिकार सम्बन्धी जातिगत विभेद (Caste

Differentiations with Regard to Religious and Social Disabilities and Privileges) -
भारतीय समाज में जातिगत विभेदों का एक अत्यन्त कुत्सित रूप यह भी है कि यहाँ परम्परागत रूप में कुछ जातियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जबकि दूसरी ओर कुछ जातियों पर अनेक प्रकार की धार्मिक और सामाजिक नियोग्यताएँ लाद दी गई हैं। इस सम्बन्ध में मुख्य बात यह है कि सबसे अधिक विशेषाधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त हैं और सबसे अधिक नियोग्यताएँ 'शूद्र' जातियों के लिये हैं। दक्षिण भारत में तो कुछ शूद्र जातियों, जिन्हें 'अच्छूत' कहकर पुकारा जाता था, की स्थिति वास्तव में अत्यन्त ही दयनीय थी। वे उच्च जाति को छूना तो दूर, उनको अपनी शक्ति भी नहीं दिखा सकते थे। "लेखकों का व्यक्तिगत अनुभव है कि लगभग 50-60 वर्ष पहले तक सफाई-कर्मचारी को सुबह होने से पहले ही सड़क पर सफाई का कार्य करने अपने घर लौट जाना पड़ता था।" इसी प्रकार ट्रावनकोर, पुणे आदि अनेक स्थानों में अनेक सड़कों पर अच्छूतों को चलने की आज्ञा न थी। उसी प्रकार 'शूद्र' जाति के लोगों को मन्दिरों व अन्य धार्मिक स्थानों में प्रवेश का अधिकार न था। उनको न तो शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ने का अधिकार था, न ही उन कुओं व तालाबों से पानी भरने का अधिकार था जिनको कि उच्च जाति के लोग व्यवहार में लाते थे। गाँवों में तो इस प्रकार के विभेद और भी कठोर होते थे और अच्छूतों को किसी भी प्रकार का सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त न था। वे किसी भी प्रकार का धार्मिक-संस्कार करने में अधिकारी न थे और तो और गाँवों में अच्छूतों को बस्ती के बाहर ही समझों में घर बनाकर रहना पड़ता था।

आधुनिक समय में निम्न जातियों पर लादे गये उपर्युक्त सामाजिक और धार्मिक विभेद व निर्योग्यताएँ समाप्त प्रायः हो गये हैं। इसका अधिकाधिक प्रारम्भिक रूप में श्रेय पूज्य बापू को है। आपके 'हरिजन आन्दोलन' ने न केवल स्वस्थ जनमत का ही निर्माण किया, अपितु सरकार को भी हरिजन-उत्थान के सम्बन्ध में प्रयत्नशील बनाया। आज सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में उन्हें राज्य की ओर से केवल समान अधिकार ही प्राप्त नहीं हैं, बल्कि विशेष रूप से सभी प्रकार की नौकरियों, शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश, विधान-सभाओं, संसद तथा मंत्रिमण्डलों में उनके लिए स्थान सुरक्षित भी कर दिये गये हैं। आज वे किसी भी सार्वजनिक पूजा के स्थान में प्रवेश कर सकते हैं; धर्म से सम्बन्धित किसी भी पवित्र नदी, तालाब आदि में स्नान कर सकते या पानी ले सकते हैं; किसी दुकान, जलपान-गृह, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश कर सकते हैं; किसी भी पेशे, व्यापार या उद्योग को अपना सकते हैं; किसी भी शिक्षा-संस्था में प्रवेश पा सकते हैं या किसी भी मुहल्ले में जमीन खरीदकर मकान बनवा सकते हैं। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि ये सभी समानाधिकार कानूनी तौर पर मान्य हैं; व्यावहारिक रूप में 'हरिजनों' की परम्परागत निर्योग्यताएँ आज भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। विशेषकर दूर-दराज के गाँव में, जहाँ ऊँची जातियों का आधिपत्य है, इन जातियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। गाँवों के लोग आज भी अत्यन्त रूढ़िवादी हैं, अतः उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि कानून पास होने के साथ-ही-साथ वे परम्परात्मक सभी निषेधों को त्यागकर नवीन परिस्थितियों को पूर्णतया मान लेंगे। हाँ यह बात निश्चित रूप से स्वीकार योग्य है कि नगरों में धार्मिक और सामाजिक निर्योग्यताएँ सम्बन्धी जातिगत विभेद आज प्रायः समाप्त ही हो गये हैं।

जातिगत विभेदों का अति उग्र रूप : अनुसृचित जातियाँ

(AN EXTREME FORM OF CASTE-DIFFERENTIATION)

भारतीय समाज में जातिगत विभेदों का अध्ययन

हमारे सामने हैं। भारत का यह दुर्भाग्य ही है कि इस देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा मटियों से न